P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 **SHRINKHALA :** VOL-II * ISSUE-VIIIApril-2015
E: ISSN NO.: 2349-980X

समकालीन विमर्शों में निहित सम्भावनाएं (स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी के परिप्रेक्ष्य में)

Dear Author,
Please provide **ABSTRACT, KEY WORDS and REFERENCES must be in MLA pattern,** for this paper with the proof urgently otherwise your paper may be transfer for next issues untill above are recieved.

Please Send one passport size photo in our mail id

राजेन्द्र सिंह
व्याख्याता,
हिन्दी विभाग,
श्री कल्याण राजकीय महाविद्यालय,
सीकर, राजस्थान

सारांश

मुख्य शब्द : PleaseAdd Some Key Words.

परिचय

पिछले 20–25 वर्षों में तेजी से बदलते सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक परिवेश ने कहानीकार को लेखन के लिए नई जमीन प्रदान की है। साहित्य के संदर्भ में 'विमर्श' की संकल्पना आधुनिक काल की देन है। समय और समाज की धाराओं ने साहित्य में विभिन्न विचारधाराओं को जन्म दिया। दरअसल विमर्श की संकल्पना इन्हीं विचारधाराओं का प्रतिनिधित्व करती है। विचार विनिमय का आधुनिक प्रतिरूप विमर्श है। स्वाधीनता पूर्व तथा स्वाधीनता प्राप्ति के बाद से लेकर प्रायः सन् 1960 तक के लेखन में भी विमर्श की आवश्यक अभिव्यक्ति मिलती है। परन्तु इसमें विमर्श से अधिक तत्कालीन कटु यथार्थ तथा समस्याओं की भयावहता अधिक दृढ़ता के साथ अंकित करने का प्रयास परिलक्षित होता है। विमर्श केन्द्रित लेखन प्रायः 1960 के बाद ही नजर आता हैं जिसे समकालीन संज्ञा से भी संबोधित किया जा सकता है। समकालीन रचनाकार का बोध एकांगी और इकहरा नहीं होता। अपनी स्वचेतना और संवेदनशीलता के बल पर वह काल सीमाओं का अतिक्रमण करता है। वह जड़ और संवेदनहीन व्यक्ति नहीं हो सकता। स्वचेतना, सचेतना या संवेदनशील, समकालीनता की आवश्यक शर्तें हैं। जड़ व्यक्ति अपने काल, अपने समय के व्यक्ति और प्रवृतियों की परवाह नहीं करता। वह एक गतिहीन मूर्च्छा में जीता रहता है।[1] यही कारण है कि समकालीनता अपने समय से सम्बद्धता के बावजूद सर्वांशतः अपने अतीत से विछिन्न नहीं हो सकती। वास्तव में उसकी ऐतिहासिक प्रक्रिया में बीत चुकी समकालीनता के भी बहुत से अंश आगामी युग में भी अपनी प्रासंगिकता खोजते हैं और उस युग की समसामयिकता का अंग बनकर उसकी समकालीनता में स्वीकृति पा लेते हैं।[2]

पिछले कुछ समय से स्त्री, दलित और आदिवासियों को केन्द्र में रखकर प्रचुर वैचारिक साहित्य रचा गया, 'विमर्श' केन्दित इस बहस ने अनेकानेक पक्ष रेखांकित किए है। साहित्य इससे निश्चय ही समृद्ध हुआ। जब यह विमर्श कहानी, उपन्यास, कविता, नाटक इत्यादि विधाओं में आता है तो इसकी अभिव्यक्ति बदलती है, उपस्थिति संशोधित होती है। तब संवेदना और विचार में, हृदय और बुद्धि में रचनात्मक द्वंद्व होता है। लेखक इस द्वंद्व को समझकर एक साथ विमर्श और रचना का निर्वाह करते है। समकालीनता में भी द्वन्द्वात्मकता अनिवार्य रूप से विद्यमान रहती है। वास्तव में समकालीनता केवल प्रवाह नहीं, उसका स्वरूप यदि द्वन्द्वात्मक नहीं तो फिर कुछ भी नहीं।[3] यह द्वन्द्वात्मक स्थिति ही उसे अविराम रूप से कालचक्र से सम्बद्ध रखती है। इस प्रकार वह एक ओर व्यतीत को समर्पित होती रहती है और दूसरी ओर अनागत में अपनी संभावनाएं खोजती रहती है। एक ओर तिल–तिल क्षरित होना और दूसरी ओर तिल–तिल जुड़ते जाना, यह अपने आप में एक द्वन्द्वात्मक स्थिति है जो कि समकालीनता की प्राणचेतना से जुड़ी हुई है। यह उसकी एक अनिवार्य अपेक्षा है जो उसे रचनात्मक ऊर्जा प्रदान करती है–उसी बिन्दु पर से समकालीनता की दोहरी भूमिका उदित होती।[4]

डॉ. मैनेजर पांडेय के अनुसार ''कालजीवी हुए बिना कालजयी नहीं हुआ जा सकता। कालजीवी का अर्थ तीव्र समकालीन बोध ही है।'' हर युग की अपनी सीमाएं होती हैं। हरेक रचनाकार अपन वैचारिक, सामाजिक, पारिवारिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक प्रतिबद्धताओं से जाने अनजाने जुड़ा रहकर भी वह

वैश्विक परिप्रक्ष्य में कालजयी एवं समकालीन होता है। वह अपनी इस दृष्टि को कथ्यात्मक एवं शैल्पिक स्तर पर इस तरह से प्रस्तुत करता है कि उसकी वैचारिक प्रतिबद्धताओं और तदयुगीन मर्यादाएं आपस में दूध और पानी की तरह घुल मिल जाऐं। समकालीनता बोध को स्थापित परम्पराओं के विद्रोह के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए बल्कि परम्पराओं को अपने समय के अनुरूप ढले हुए नये रूपों में देखा जाना चाहिए। क्योंकि कोई भी रचनाकार अपने समयानुरूप की रचनात्मक दायित्व निभाता है। युगबोध का भाव उसे अपने समय के साथ जोड़ता है इसलिए हरेक लेखक की रचना अपने समय की अभिव्यक्ति के कारण समकालीन ही होती है।

'विमर्श' शब्द मूलतः गहन सोच विचार, विचार विनिमय तथा चिंतन मनन को द्योतित करता है। भोलानाथ तिवारी के शब्दों में– विमर्श का अर्थ है तबादला ए ख्याल, परामर्श, मशविरा, राय–बात, विचार–विनिमय, विचार–विमर्श, सोच–विचार। इस प्रकार विमर्श का स्वरूप अत्यंत व्यापक है। व्यक्ति समाज, वर्ग, जाति, विचार तथा कोई विशिष्ट स्थिति–किसी भी विषय को लेकर विमर्श हो सकता है। यह एक ऐसी संकल्पना है जिसके अन्तर्गत संसार के किसी भी विषय पर तर्कसंगत सोच–विचार–विनिमय हो सकता है। विवेचन विश्लेषण किया जा सकता है।

समकालीन हिन्दी साहित्य में जिस प्रकार वस्तुजगत का वैविध्य प्राप्त होता है वैसे ही विमर्श का वैविध्य प्राप्त होता है। विमर्शमूलक विचार से तात्पर्य उन विचारों से है तो समाज के किसी विशिष्ट वर्ग या विशिष्ट विषय से संबंधित है। समकालीन हिन्दी साहित्य में वर्ग को केन्द्र में रखकर सशक्त लेखन हुआ है। स्वाधीनता प्राप्ति का परिवेश भले ही मोहभंग का परिवेश सिद्ध हुआ हो, लेकिन शिक्षा के प्रचार एवं प्रसार, औद्योगिक क्रान्ति, वैज्ञानिक उन्नति, पाश्चात्य जगत से संपर्क और समाज सुधारकों का निर्माण इत्यादि स्थितियाँ समकालीन समय और समाज की देन है। विशेषतः शिक्षा, पश्चिमी साहचर्य और सामाजिक प्रबोधन ने लोकचेतना एवं लोकजागरण का अपूर्ण कार्य किया है। इसी जागरण एवं सचेतन माहौल ने समकालीन साहित्यकारों को प्रभावित किया, फलतः विभिन्न विषयों, प्रश्नों तथा मसलों पर संवेदना के साथ लेखन हुआ। जिससे समकालीन साहित्य में 'विमर्श' लेखन के केन्द्र में आ गया। बल्कि कहना चाहिए कि विविध विमर्शमूलक विचारों की अभिव्यक्ति हुई है जैसे – स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, उतर आधुनिक विमर्श, विखंडन विमर्श, विघटन विमर्श, आदिवासी विमर्श, अल्पसंख्यक विमर्श, सत्ता विमर्श, सर्वहारा या झुग्गी विमर्श, शिक्षा विमर्श, सैक्स विमर्श, श्रमिक विमर्श, कला विमर्श, बाल विमर्श, वृद्ध विमर्श आदि। प्रसिद्ध हिन्दी कथा मासिक 'हंस' के जरिए संपादक के नाते राजेन्द्र यादव ने स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, सता–विमर्श तथा अल्पसंख्यक विमर्श के लिए गंभीर चिंतन का माहौल बनाया। स्त्री विमर्श और दलित विमर्श जैसे विषय तो आज पूरे देशभर के साहित्य जगत में चिंतन मनन का विषय बन चुके हैं। ऐसा लगने लगा है कि हम आज विमर्शों की दुनिया में जी रहे है। जहां सिद्धान्त बेमानी हो गये है। विभिन्न धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक विमर्श पुनः अनेकानेक उप–विमर्शों में विभाजित होकर विभिन्न साहित्यिक विधाओं में अभिव्यक्त हो रहे हैं।

वर्तमान समय में मनुष्य के सोच एवं व्यवहार में बड़ी तबदीली आई हैं। वृद्ध पूंजीवाद की तकनीकी क्रान्ति ने जहां उत्पादकता के साधनों में क्रान्तिकारी बदलाव किया है। वहीं मनुष्य का शोषण व उत्पीड़न को भी बढाया है और उसके सूचना और प्रौद्योगिकी से मनुष्य और प्रकृति पर पकड़ बनाकर नये सवाल भी पैदा किये है। मनुष्य की आत्मपरकता में आयी अतिशयता ने हमारी व्यवहार प्रणाली को प्रभावित और प्रेरित करने वाले हितों, अन्तर्विरोधों और स्वपनों से निर्मित चिन्तन ने समाजशास्त्रों में नये संकट पैदा किये हैं। आधुनिक केन्द्रवाद टूटा है। और नये केन्द्र बने हैं जिनमें स्त्री पुरूष व अन्य वर्गों के तमाम नये प्रश्न उभर कर आये हैं।

लेखन के लिए यह वक्त चुनौतियों भरा है। एक नहीं अनेक मोर्चे खुले हुए हैं। आदमी की प्रतिबद्धता खंडित हो रही है। साहित्य का मानवीय रिश्ता उसकी जीवन यात्रा के साथ आरंभ होता है। साहित्य का मूल संबंध मानव की संवेदना से है। संवेदना के बिना साहित्य की कल्पना बेमानी है। साहित्य सभी चिंतन, दर्शन तथा विचारधाराएं साहित्य आत्मसात करता है और नए कलेवर के साथ रचनाकार की लेखनी से विविध रूपों में निःसृत होता है। लेखक अपने परिवेश में व्याप्त समस्याओं को निरख परख कर सभी के अनुभवों के साथ उसे व्यक्त करता है। आज का संसार वैश्वीकरण, उदारीकरण, बाजारीकरण, उपभोक्तावादी दौर से गुजर रहा है। 'ग्लोबल विलेज' की संकल्पना में। अन्धानुकरण और भौतिकता के हावी होने क कारण मूल्य नैतिकता, परम्परा, सांस्कृतिक संदर्भ कांच के बर्तन की तरह टूट रहे हैं। बाजारीकरण व प्रदर्शनप्रियता के चलते आदमी धीरे धीरे कहीं पीछे छूटता जा रहा है और उसकी पहचान बाजार के उत्पादों से होने लगी है। जैसे–जैसे सभ्यता का दबाव बढ़ता है विचार या कला की चुनौतियां भी बढ़ती है। यहीं वजह है कि इन क्षेत्रों के हर दौर में अपने आपको पुनर्परिभाषित करने, अपने नये मायने खोजने के इतने सारे उद्यम दिखाई पड़ते हैं। इन दबावों की वजह से ही सृजनाशीलता अपने आप को पुनर्नवा करने व परिष्कार करने को बाध्य होती है। निश्चित तौर पर ऐसे दबावों के कुछ नकारात्मक परिणाम होते हैं, लेकिन अंततः सच्ची सृजनशीलता इसी दबाव के द्वन्द्व से खुद को उभरकर गढ़ती है और सार्थक होती है क्योंकि फिर इसी सृजनशीलता के जरिए उन दबावों को पहचाना जा सकता है। इस बिखराव की दशा में साहित्य अपनी पूरी क्षमता से मानव–मानव के मध्य दूरी कम करने, सामाजिक समरसता को बाजार से बचाए रखने की कोशिशों में लगा है। साहित्य इस दौर में आ पहुँचा है जहाँ चारों ओर विविध स्वरूपों में पूंजी, धन, वैभव पाने की ललक और प्रदर्शन की झलक दिख रही है। इसमें मनष्य की उपस्थिति उसकी अस्मिता, समूचा अस्तित्व दांव पर लगा नजर आता है। साहित्य के अपने मूल्य, मानदंड, संहिताएं और सौन्दर्यशास्त्र है। हालांकि ये भी समय समय पर बदलते, संशोधित परिवर्धित होते रहे हैं, मगर वे हमारे

भावलोक से लगभग शाश्वत, सार्वभौमिक, सर्वव्यापी हैं। मार्क्स ने कहा था, ''शासक वर्ग के विचार ही समाज को नियंत्रित शासित करने वाले विचार भी होते हैं।'' (जिम पकमें व ितनसपदह बसें।तम।सूले जीम तनसपदह पकमें) कालांतर में शासक वर्ग बदलता और लुप्त हो जाता है, मगर विचारों की सत्ता बनी रहती है।''[7] प्रेमचंद साहित्य के मूल्य स्पष्ट करते हुए लिखते हैं– वहीं साहित्य खरा उतरेगा जिसमें उच्च चिन्तन हो, स्वाधीनता का भाव हो और सौन्दर्य का सार हो। साहित्यकार का लक्ष्य महफिल सजाना और मनोरजंन का सामान जुटाना नहीं है। साहित्य मशाल दिखाती हुई चलाने वाली सच्चाई है।[8]

साहित्य के इन समस्त दायित्वों का निर्वाह वर्तमान समय में गद्य की कोई विधा अगर बड़ी कुशलता से कर रही है तो वह है कहानी। कहानी एक ऐसी विधा बनकर उभरी है जो जीवन की अनुभूतियों को सहज और स्वाभाविक तरीके से व्यक्त करती है। इतिहास इस बात का गवाह है कि नीति, लोक–व्यवहार, धर्म, राजनीति आदि उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कहानियाँ लिखी गई। आज की कहानी पुरानी कहानी से भिन्न रूप लिए हुए है। नई कहानी में आने वाले पात्र न तो इतना एंकातिक रूप से निजी है कि दुनिया की किसी और चीज से उसका संबंध ही न हो और न ही वह इतना सामाजिक है कि उसका कोई व्यक्तिगत जीवन ही न हो। नई कहानी इन दोनों को मिलाती है यानी नई कहानी वैयक्तिकता में सामाजिकता और समाजिकता में वैयिक्तकता की तलाश है। संबंधों के टूट जाने या समाप्त हो जाने पर आकर नई कहानी रूकती है और यहीं से आज की कहानी शुरू होती है, रिजेक्शन की बात करती है। हिन्दी कहानी आदर्श, आदर्शोन्मुख यथार्थ, यथार्थवाद प्रयोग, दार्शनिकता व मोहभंग के रास्तों से गुजरती हुई आज एक प्रमुख सशक्त रचना विधा बन गयी है। इस कहानी विधा को युवा, अद्वितीय व सुंदर बनाने म नई कहानी ने भरपूर योगदान दिया। नई कहानी आंदोलन के माध्यम से हिन्दी में पहली बार युवा रचनाशीलता का विस्फोट हुआ। एक तरफ राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, निर्मला वर्मा, भीष्म साहनी, कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी, उषा प्रियवंदा, रघुवीर सहाय जैसे नगरीय बोध वाले रचनाकारों के साथ–साथ कमलेश्वर व अमरकांत भी रचनाकर्म में जुटे थे तो दूसरी तरफ रेणु ओर शैलेश मटियानी जैसे कथाकारों ने अंचल को उसकी समग्रता के साथ प्रस्तुत किया। 60 के दशक में कहानी लेखन का एक विशेष वर्ग सामने आया जिसे हम स्त्री लेखन कह सकत हैं। इनमें उषा प्रियवदा, सुधा अरोड़ा, ममता कालिया, कृष्णा सोबती, मृदुला गर्ग इत्यादि नाम उल्लेखनीय हैं। इन महिला कहानीकारों ने अपनी कहानियों में बदलते नर नारी सबंधों के आलोक में नारी समस्याओं को नये तेवर में प्रस्तुत किया है। 80 के दशक में दूधनाथ सिंह, रवीन्द्र कालिया, काशीनाथ सिंह, ज्ञानारंजन, मार्कण्डेय, बटरोही, मणिका मोहिनी, निरूपमा सेवती, गिरिराज किशोर, असगर, मिथिलेश्वर, गोविन्द मिश्र, प्रतिमा वर्मा, सूर्यबाला, मंजुला भगत, राजी सेठ, चित्रा मुद्गल, मेहरून्निसा परवेज, मालती जोशी, कृष्णा अग्निहोत्री, मृणाल पाण्डेय, दीप्ति खण्डेलवाल, वजाहत, अबदुल्ल बिस्मिल्लाह, संजीव, उदय प्रकाश, पंकज बिष्ट, शिवमूर्ति, अखिलेश प्रियवंद आदि ने युवा रचनात्मकता का नया संसार खोल दिया। सारिका, धर्मयुग व अस्सी के उत्तरार्द्ध में 'हंस' जैसी पत्रिकाओं ने अहम भूमिका निभाई। आज की नयी पीढी में अल्पना मिश्रा, वंदना राग, मनीषा कुलश्रेष्ठ, कविता, सोनी सिंह, पंखुरी सिन्हा, महुआ माजी, नीलाक्षी सिंह आदि के साथ साथ तरूण भटनागर, शशिभूषण द्विवेदी, प्रभात रंजन, आशुतोष भारद्वाज, राकेश बिहारी, मो. आरिफ, मनोज कुमार पाण्डेय, विमल चंद्र पाण्डेय, कुणाल सिंह, संजय कुंदन, उमाशंकर सिंह 'पथिक', राकेश कुमार सिंह जैसे अनेक नाम हैं जो परिवर्तित संवेद्यता के साथ कथ्य व शिल्प के बने बनाए खांचों को तोड़ कर नई दिशा का संधान कर रहे हैं। कहानी आज मात्र एक विधा न रह कर गंभीर बौद्धिक विमर्श का मंच बन चुकी है। यह गंभीर बौद्धिक विमर्श इस लिए संभव और जरूरी हुआ कि भूमंडलीकरण के तहत एक विश्व ग्राम की कल्पना ने मुक्त बाजार और उपभोक्तावादी संस्कृति को बढ़ावा दिया। जिसे अपसंस्कृति की संज्ञा भी दी गई, इस अपसंस्कृति से बचाव व अपने श्रेष्ठ मूल्यों की रक्षा क प्रयत्न हम साहित्य की इस विधा में भी तलाशने लगे। हर सजग शब्दकर्मी अपने माध्यम, अपनी लेखनी से विदेश से आयातित इस अंधड़ से बचने के उपाय खोज रहा है। यहीं खोज कहानी को विमर्श धर्मा बनाती है कहानी की प्रवृत्ति अपने तत्काल को शीघ्र ही अपने में समाहित करती है। इसलिए अपसंस्कृति का यह आक्रमण आज उसकी सबसे बड़ी चिंता है। इस चिंता ने कहानी की रहन और वहन दोनों को बदल दिया है। अपने इस बीहड़ समय से जूझती कहानी कभी फंतासी, कभी जादुई यथार्थ, कभी आत्मकथा, कभी संस्मरण, कभी रिपोर्ताज, कभी व्यंग्य और कभी शीर्षक के शब्दों से छेड़छाड़, कभी संस्कृत के कथा सरित सागर के शिल्प से छेड़छाड़ आदि–आदि युक्तियों का सहारा लेती है। यह कहानी का विरूपीकरण नहीं है, अपितु विधा के लिए बनी बनाई चारदिवारियों को तोड़कर उसे एक ऐसे मुकाम पर ला खड़ा करता है, जहाँ से वह अपने वर्तमान को भलीभाँति खंगाल सके ओर आगे की सार्थक दिशा तय कर सके।

आज लेखक के रचना मानस पर दबाव बनाए रखने वाले अनेक सांस्कृतिक संकटों के साथ–साथ व सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक परिवर्तन हैं जिनसे वह अपनी सर्जना में जुड़ा रहा है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया में नई आर्थिक नीति, उदारीकरण की कवायदें, निजीकरण के नाम पर बहुराष्ट्रीय कंपनियों की आमद और उनका बढ़ता वर्चस्व तथा उपभोक्तावाद और बाजारवाद का फैलाव है जिनका कोई ओर छोर नहीं है। इलेक्ट्रोनिक दूरसंचार ने समीप के मानवीय संचार और अंतःक्रिया को उपेक्षित करवा दिया है। दूरसंचार के कारण मनुष्य का आपसी संवेदनात्मक लगाव सीमित व कुंठित होता जा रहा है। विकसित होती इलेक्ट्रोनिक जीवन पद्धति पारंम्परिक लोक–संस्कृति ओर लोक सृजनशीलता को लुप्त कर रही है। दूरसंचार के साधनों का वाणिज्यिक उदेश्यो के लिए अधिकाधिक प्रयोग होने लगा है। यह तकनीक लाभ कमाने का माध्यम बन गयी है। टी.वी. चैनलों के जरिए पश्चिमीकरण के प्रभावस्वरूप वह सब दिखाया जाता है।

जिससे अन्ततः धन कमाया जा सके। तन उघाडू संस्कृति ने हमारे सांस्कृतिक परिदृश्य को पूरी तरह बदल दिया है। सादर्य प्रतियोगिताएं, फैशन परेडस, ब्रांडेड उत्पादों की भरमार ने हमारा नजरिया बदलने के साथ मध्यमवर्ग में एक ऐसा वर्ग पैदा कर दिया है जो उपभोक्तावादी संसार के प्रत्येक पदार्थ को येनकेन प्रकारेण क्रय कर लेने की क्षमता पैदा करने की जुगाड़ में लगा है। नवयुवा वर्ग अपने गले को संवारकर अपने नृत्य के ठुमकों को बेहतर रूप देकर या अपने हंसने हंसाने के गुणों को विकसित कर टी.वी. चैनलों पर बिखरे पड़े गोल्ड को कमाने की दौड़ में शामिल हो रहा है। सौंदर्य, नृत्य, गायन की इन प्रतियोगिताओं, बहुराष्ट्रीय कंपनियों की विपणन नीतियों ओर विज्ञापन के मायावी संसार ने नगर, कस्बों, गांवों तक को अपनी चपेट में ले लिया है। बाजार नियंत्रित इलेक्ट्रोनिक मीडिया, नव साम्रज्यवाद, अपसंस्कृति, उपभोक्तावाद, सांप्रदायिकता आदि का प्रसार और स्त्री छवि ओर उपभोग की प्रक्रिया में जो परिवर्तन कर रहा है, उनसे समकालीन हिन्दी कहानी की विषय वस्तु और सरोकारों में रद्दोबदल और उथल–पुथल हो रही है। ये परिवर्तन कहीं प्रतिरोध, कहीं खुलासे और कहीं आत्मसातीकरण के रूप में व्यक्त हो रहे हैं। जयनंदन की कहानी 'विश्वबाजार का ऊँट' और संजय की कहानी 'बुद्धिभोज' नव साम्राज्यवाद के नए रूप का खुलासा करने वाली प्रभावशाली कहानियाँ हैं। उपभोक्तावाद और अपसंस्कृति भारतीय जन साधारण को अपनी जड़ों से काटकर संवेदनाविहीन, स्वकेन्द्रित मनुष्य में तब्दील कर रहे हैं। ममता कालिया की कहानी 'दौड़' इस लिहाज से सर्वाधिक उल्लेखनोय कहानी कहीं जा सकती है। यह एक ऐसी कहानी है जो बाजार के दबाव समूह, उनके परोक्ष–अपरोक्ष मारक तनाव, आक्रमण और निर्ममता तथा अंधी दौड़ में नष्ट होते के आसन्न खतरे में पड़े मनुष्यत्व को उजागर करती है। वर्तमान परिस्थितियों के प्रतिरोध में पिछले लगभग 15 वर्षों में परिमाण व गुणवत्ता की दृष्टि से अनेक सशक्त कहानियाँ लिखी गई है। उदय प्रकाश 'चीयर अप कोला ब्लूम96', 'पीली छतरी वाली लड़की, 'वारेन हेस्टिंग्स का सांड' व 'धोखा' जैसी कहानियों में सांस्कृतिक आक्रमण के खिलाफ बुलंद आवाज उठाते हैं। सुभाष चंद्र कुशवाहा की 'दूसरे की तलाश' व अरूण प्रकाश 'भासा' में वर्तमान वित्त व्यवस्था में सामान्य–जन की दुर्गति ओर दर्द को बारीकी से पकड़ते हैं और अभिव्यक्त करते हैं। यदि अरूण प्रकाश, रामधारी सिंह दिनकर, शैवाल आदि कहानीकार बिहार के गांव समाज के रूपांतरण का पीड़ा भरा आख्यान प्रस्तुत करते हैं तो जम्मू हिमाचल के कहानीकार अपने पहाड़ के पहाड़ न रह जाने की पीड़ा को गहराई से चित्रित करते हैं।

इस प्रकार जितने विचार हैं विषय हैं, सरोकार हैं उतने ही विमर्श हैं। पिछले कुछ वर्षों से स्त्री व दलित अस्तित्व के प्रश्नों को लेकर स्त्री–विमर्श व दलित–विमर्श एक गहरे चिन्तन के रूप में से कहानी केन्द्र में आए कि युगों युगों से उपेक्षित दोनों वर्गों पर कहानी के माध्यम से गहन बुनियादी वैचारिक संघर्ष व मुक्ति के सार्थक प्रयत्न हुए हैं। शिक्षा से वंचित दीन–हीन, दलित पिछड़ा वर्ग जो समता व मानवीय मूल्यों के बारे में न कुछ जानता है और नहीं कुछ पहचानता है। जो निरन्तर श्रम व सेवा कर भी अधभूखा रहता है। जिसकी स्त्री को पहनने के पर्याप्त वस्त्र नहीं, जिनके बच्चे बालश्रम करने को मजबूर हैं। उनकी बेहतरी से जुड़े सरोकारों का लेकर ओमप्रकाश वाल्मीकि, जयप्रकाश कर्दम, सूरजपाल चौहान, मोहनदास नैमिषिय, कँवल भारती, श्योराज सिंह चौहान, अजय नावरिया, राजेन्द्र कुमार कनौजिया आदि लेखकों ने दलित जीवन पर सशक्त कहानियां लिखकर जीवन के अनचीन्हे पहलुओं व पीड़ाओं का परिचय दिया। भिंवडी, मुंबई के दंगे, उत्तरप्रदेश के विभिन्न स्थानों पर हिन्दु मुसलमानों के बीच तनाव, संघर्ष, अयोध्या प्रकरण, गोधराकांड, जम्मू कश्मीर के मामले जैसी अनेकानेक साम्प्रदायिक समस्याओं ने कहानीकारों की कहानी के केन्द्र में भी स्थान प्राप्त किया। वृद्धावस्था की समस्या को पिछली पीढ़ी के काशीनाथ सिंह से लेकर नई पीढ़ी के जसविंदर शर्मा तक अनेक कहानीकारों ने अपनी चिंता व चिंतन का विषय बनाया। प्रेम को कहानी का विषय बनाने वालों के लिए सबसे बड़ी चुनौती है कि वे प्रेम की दिव्यता का बोध कराएं या देहिक स्तर पर उतार कर कहानी को मसालेदार बना दें। जो भी आज ना विचार की कमी है न विषय की। इसलिए कहानी के अनेकानेक कोण विमर्श बनकर बह निकले है। स्त्री, दलित, बाजार, मीडिया विमर्श की मुख्यधाराओं के साथ बाल, पर्यावरण, आदिवासी, वृद्ध, संस्कृति, मूल्य, लोक आदि विमर्श की क्षीण धाराएँ भी नवविमर्शों की वैतरणी का हिस्सा है। रचना के विषय, थीम, संदेश ही उसका विमर्श हैं। विषय की विविधता विमर्शों की विविधता है। नई बोतल में पुरानी शराब की तर्ज पर नए नाम में पुरानी विचारधाराओं, विषयों या समस्याओं का समेटना, नव विमर्श है। लेकिन उसमें नया कुछ नहीं हो, ऐसा नही है। नवलेखन की धमक स्वागत योग्य है लेकिन शिल्प की गुंजलकों में खो जाने की चुनौती और उत्तर आधुनिक युग की समस्त प्रगति के विभिन्न साधनों, सूचना प्रौद्योगिकी कम्प्यूटर, इंटरनेट आदि से लेस अपने अनुभव जगत से सृजित शब्दावली के मध्य सशक्त भाषा व वर्तनी प्रयोग की सावधानी को अवश्य संभालकर रखना होगा। दृश्य श्रव्य साधनों ने आज कहानी में किस्सागोई को पुनर्जीवन दिया है। इलेक्ट्रोनिक मीडिया के प्रभाव से हिंदी कहानी में श्रोता दर्शक पाठक या सहृदय को सामने उपस्थित मानकर कहानी लिख रहा है। ऐसे ही एक प्रश्न के उत्तर में थोड़ा सा नाखुश होकर कथाकार नासिरा शर्मा ने कहा था, '........ दूसरी बात मुझे जो बेचैन करती है वह हर कहानी में स्त्री विमर्श की तलाश। उपर से निडर और बेबाक औरत का चरित्र निर्माण। किस्सागोई, कहानी का रस, जीवन की झांकी, भाषा का चटखारा, गया चूल्हें भाड़ में। कहानी बंट गई विभिन्न विमर्शों के खानों में।''9 कहानीकार स्वयं प्रकाश ने एक जगह जोर देकर कहा है कि ''कहानी चाहे जैसी हो रोचक जरूर होनी चाहिए, यह बहुत जरूरी है। वरना पढ़ेगा कौन? आप करते रहिए बड़ी बातें। और बल्कि मुझे तो लगता है, आन वाले समय में कहानी सुनने सुनाने की विधा होने जा रही है।''[10]

अंत में यही कहना समीचीन होगा कि अनेकानेक धाराओं के मध्य 'मानव केन्द्रित विमर्श' ही परम विमर्श

ओर अंगी विमर्श है, जो मानव की समस्त संवेदनाओं व अनुभूतियों को बनाए रखने का पक्षधर हैं। शेष सभी विमर्श उसी के अंग हैं और सभी नए पुराने विमर्श इस एक विमर्श में समाहित हैं। आज की उन्नत प्रौद्योगिकी के बीच भी साहित्य अपने इस धर्म को निभाने में पीछे नहीं है। नव विमर्श की सभी धाराएं साहित्य के उस महासमुद्र में ही जाकर मिल जाती हैं, जिनका एकमात्र उद्‌देश्य अन्याय के विरूद्ध आवाज उठाना व मानव कल्याण का मार्ग प्रशस्त करना है।

संदर्भ

1. समकालीन सिद्धांत और साहित्य पृ. 13, विश्वम्भरनाथ उपाध्याय
2. आधुनिकता और समकालीनता की प्रक्रियाः काल चेतना के संदर्भ, डॉ. हरिमोहन, पृ. 70 (मधुमती सितम्बर 1978)
3. समकालीन कहानी दिशा और दृष्टि पृ. 148 सं. डॉ. धनंजय।
4. आधुनिकता और समकालीनता की प्रक्रिया : काल चेतना के संदर्भ में– डॉ. हरिमोहन – पृ. 7।
5. समकालीन कविता की भूमिका – डॉ. मोहन पृ. 9
6. हिन्दी पर्यायवाची कोश सं. डॉ. भोलानाथ तिवारी पृ. सं. 572
7. 'हंस' – जून 2003– मेरी तेरी उसकी बात– राजेन्द्र यादव– पृ. सं. 5
8. प्रेमचंद– साहित्य का उद्‌देश्य प्रगतिशीलता– समाज, साहित्य और साहित्यकार– डॉ. हुसैनी बोहरा–मधुमती–नवम्बर 2008, पृ.सं. 16
9. मेरे साक्षात्कार : नासिरा शर्मा, पृ. 148, किताबघर प्रकाशन।
10. रंगशाला में एक दोपहर – स्वयं प्रकाश– पृ.सं. 158